जून १९९४ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

उद्‌बोधन

सभी कैदी हैं

तिहाड़ जेल में कैदियों का विशाल शिविर निर्विघ्न संपन्न हुआ। एक हजार साधकों का बृहद शिविर लगने की पु. गुरुदेव की भविष्य वाणी सफलीभूत हुई। दुखियारे कैदियों का कल्याण हुआ।

वास्तविकता तो यह है कि जेल की चारदीवारी के भीतर रहने वाले ही दुखियारे कैदी नहीं हैं। जेल की दीवारों के बाहर रहने वाले भी दुखियारे कैदी ही हैं। अपने-अपने मनोविकारों की कैद में सब गिरफ्त हैं और दुखी हैं। कैद की अवधि पूरी होने पर जेल के कैदी छूट जाते हैं, परंतु जेल के भीतर और बाहर रहने वाले इन करोड़ों-अरबों बंदियों को अपने-अपने विकारों की कैद से मुक्त हो सकना अत्यंत कठिन है। यह कैद न जाने कितने जन्मों से सब को बंदी बनाए हुए है और न जाने कितने जन्मों तक बंदी बनाए रखेगी। इस कैद की यंत्रणा असीम है, अगाध है, असह्य है। मनोविकारों के दूषित स्वभाव-शिकंजे से छुटकारा पाए बिना इस कैद से छुटकारा पाना नामुमकिन है, इस यंत्रणा से छुटकारा पाना असंभव है।

बाहरी दुनिया में कोई व्यक्ति अपराध करता हुआ पकड़ा जाय अथवा निरपराध होने पर भी संदेह में पकड़ा जाय तो उसे चारदीवारों के भीतर बंदी के रूप में रहना पड़ता है और परिवार के विछोह तथा घर की सुख-सविधा से वंचित रहने की यंत्रणा एक निश्चित अवधि तक सहनी पड़ती है। परंतु भीतर तो प्रतिक्षण अपराध पनप रहा है और प्रतिक्षण भीतर ही भीतर सजा भुगती जा रही है। अपने ही अज्ञान के कारण अंतर्मन में एक ऐसा स्वभाव बना लिया गया है जो कि राग-द्वेष की प्रतिक्रिया करता ही रहता है। इस स्वभाव-शिकंजे में सब के सब केवल जकड़े हुए ही नहीं हैं, बल्कि इसे क्षण प्रतिक्षण दृढ़ से दृढ़तर बनाए जा रहे हैं। इस आत्म-निर्मित गिरफ्तारी से कैसे मुक्त हों? इस स्वजनित दुःख से कैसे छुटकारा पाएं? विपश्यना के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं, जो इन गहराइयों तक आबद्ध इस घातक स्वभाव-शिकंजे का भंजन कर सके। चाहे जेल में हों या जेल के बाहर, सब इस आंतरिक कैद से मुक्त हों। सब इस वास्तविक मुक्ति के विपश्यना-पथ पर सजग रह कर गंभीरतापूर्वक चलते रहें। इसी में सब का मंगल है, इसी में सब का कल्याण है।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

समता बनी रही

(आप-बीती – डॉ. ओम प्रकाश)

रंगून, (ब्रह्मदेश) ७ मार्च १९७४। मैं अपनी क्लिनिक (औषधालय) में बैठा रोगियों को देख रहा था। १२ बजे के लगभग दो सज्जन आये और उन्होंने कहा कि वे बी. एस. आई. (Bureau of Special Investigation) के लोग हैं और मुझसे कुछ पूछताछ करने आये हैं। मैंने शांत भाव से कहा –पूछिये! वे बोले पहले आप इन लोगों से निपट लें, कर्मचारियों को घर भेज दें –तब बातें करेंगे। मैं काम में लग गया। कोई एक घंटे बाद अवकाश मिला। फिर उनसे बातें हुईं।

उन दिनों बर्मा में इस बी. एस. आई. का बड़ा ही आतंक था। एक विशेष अभियान चलाया गया था, जिसे 'गलों' अभियान (गरुड़-अभियान) नाम दिया गया था। ये लोग अचानक किसी भी 'संदिग्ध' व्यक्ति पर आ झपटते थे और धर-पकड़ कर ले जाते थे। महीनों सुनवाई नहीं होती थी। कहां ले जाते थे इसका भी पता नहीं लगता था। अभियुक्त को उसका 'दोष' मनवाने के लिये सब प्रकार के तरीके अपनाते थे। भांति-भांति और भिन्न-भिन्न प्रकार से मानसिक और शारीरिक यंत्रणाएं देते– यथा बिजली के झटके, बहुत तेज प्रकाश के सामने घंटों बैठाकर प्रश्न पर प्रश्न पूछना, तीन-चार दिन-रात लगातार सोने न देना आदि बातें आम जानकारी में फैली हुई थीं और इनका आतंक हौवे की तरह फैला हुआ था। अस्तु!

अब इन दोनों अफसरों ने औषधालय की आलमारियां, रजिस्टर आदि देखे। ऊपर जाकर (मेरा निवास भी क्लिनिक के ऊपरी मंजिल में ही था) आलमारी, कपड़े, रुपये –सब कुछ देखा; फिर मेरे ही टेलिफोन से अपने अफसर को कहा –"बामामट्वे बू – 'कुछ भी नहीं मिला।' उनका जो उत्तर आया तो मुझसे कहा – "आप भोजन आदि कर लें, आपको हमारे साथ कुछ दिनों के लिये चलना होगा।" मेरे एक भतीजे से कहा –एक छोटा बिस्तर तथा एक-दो पुस्तकें भी साथ ले जाने को दे दो। मैं ऊपर गया, थोड़ा सा कुछ भोजन किया। मेरे कालेज के एक मित्र भी मिलने आये हुए थे, उन्होंने भी मेरे साथ ही भोजन किया और घबरा कर तुरंत चले गये। मैंने श्रीमती जी से कहा –मुझे इनके साथ जाना होगा, ३-४ दिन लगेंगे, घबराना नहीं। इस सिलसिले में किसी को 'घूस' आदि नहीं देना। घर में दैनिक खर्च के लिये रुपये तो हैं ही; जरूरत पड़े तो बैंक से निकाल लेना। वह भी बड़ी शांत थी, घबराई नहीं! इसके उपरांत वे लोग मुझे बी. एस. आई. ऑफिस ले गये। यह ऑफिस हमारे घर के बिल्कुल पास ही था। अफसर एक ऐंग्लो-बर्मी व्यक्ति थे। गंभीर मुद्रा, तीव्र दृष्टि और नीली (बिल्ली) आखों वाले। उन्होंने कोई १ घंटे तक बातें की, कुछ इधर-उधर की और कुछ पूछताछ की। मैंने सहज भाव से शांतिपूर्वक प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया। उन्होंने चाय पिलाई और मेरे ना कहने पर कहा –पी लीजिये, शायद शाम का भोजन न भी मिले।

लगभग चार बजे वे दोनों अधिकारी मुझे अपनी जीप में बैठाकर ले चले। ऑफिस के सामने ही मेरे साढू भाई का घर था। उसकी दोनों पुत्रियां वरामदे में खड़ी देख रही थीं। खबर तो बिजली की तरह शहर भर में फैल ही गई थी कि डाक्टर जी को ले गये। मैंने हाथ हिलाकर उन्हें दिखाया, उन्होंने भी वैसा किया तो साथ का आफिसर बोल पड़ा, (Perhaps they do not know all about it)"शायद इन्हें ज्ञान नहीं है कि आप हिरासत में ले जाये जा रहे हो!"

मैं बिल्कुल शांत था, घबराहट बिल्कुल नहीं थी, भय या आशंका भी नहीं। न ही उत्सुकता कि कहां ले जा रहे हैं। इसी समता में था कि एक स्थान पर पहुँचे – बड़ा सा अहाता और बड़ा सा मकान था। सामने हथियार-बंद सिपाही तैनात थे। मैंने अंदर जाकर अपना बिस्तर एक कैम्प-कॉट पर रख दिया। मैंने समझा यही अंतिम पड़ाव है। बिस्तर खोला और लेट गया। एक पुस्तक उठाई और यूं ही पन्ना खोला सामने का श्लोक पढ़ा तो उसका आशय था – परीक्षा होने पर ही सोना कुंदन बनता है। यह पुस्तक गीता थी। मन को और भी बल मिला।

थोड़ी ही देर में एक आवाज सुनाई दी – "सया! आप भी यहां ले आये गये। मैं तीन दिनों से यहीं हूं, इसी कटघरे में खड़ा हूं। आप ख्याल रखें, किसी 'जी' से कुछ भी बात-चीत न करें, सभी खुफिया विभाग के लोग हैं।" यह आवाज एक बर्मी लड़के की थी जो कि जिस सरकारी दूकान से हम दवा खरीदते थे, उसमें काम करता था। उस दूकान के सभी कर्मचारी भ्रष्टाचार के आरोप में एक मास से हिरासत में ले लिये गये थे। उस लड़के का केवल मुख ही एक छोटी सी खिडकी से दीख पड़ता था।

अब कुछ अँधेरा हो चला था। वह बी. एस. आई. का अधिकारी आया और बोला – चलिए! फिर उनके साथ जीप में कोई आधा घंटे के बाद हम जहां पहुँचे, वह इनसिन जेल थी!

अब मुझे जेल के अधिकारियों के हवाले कर दिया गया। उन लोगों ने मेरी पुस्तकें, पैंट, कोट, जूते, घड़ी आदि सब वहीं रखवा लिये। केवल बिस्तरा जिसमें एक दरी, दो चद्दर, सिरहाना और मच्छरदानी तथा दो गम्छे, दो बनियान, एक पूरा कोट और चप्पल तथा दो लुंगियां थीं, मुझे साथ ले जाने दिया। मैंने उस बी.एस.आई. वाले से कहा –'यह क्या हो रहा है? उसने धीरे से उत्तर दिया – 'यहां का यही नियम है।

मैं अन्य बीसियों 'अभियुक्तों' के साथ खड़ा हो गया। मेरा बिस्तर आदि मेरी कांख में था। मुख और सिर चद्दर से ढँका हुआ था। हम धीरे-धीरे मंथर गति से आगे बढ़ते गये और बारी-बारी से अपने-अपने कमरों में ले जाये गये।

मेरा कमरा कोई १०"×१५' लबा-चौड़ा था। दीवार बहुत ऊंची कोई १५' होगी। कोई खिडकी या रोशनदान नहीं। एक बहुत मद्धिम प्रकाश वाला लट्टू मंद-मंद प्रकाश फैला रहा था। आने-जाने का एक ही ६.५"×४' द्वार था जो कि मोटी-मोटी लोहे की छड़ों का बना था। मोटे-मोटे दो ताले लगे थे। फर्श लकड़ी का था, जो कि नीचे पक्के फर्श पर बिछाई गई थी; परंतु यह फर्श बहुत पुराना हो गया था और फट्टों में दरारें पड़ी हुई थीं। (इनसिन जेल १९१० के लगभग बनी थी) यह सब मैं रात को नोट नहीं कर सका। सबेरे उठ कर ही पता लगा कि हमारा आवास-गृह कितना गंदा है। दीवारों पर घने जाले लटक रहे थे!

खैर, मैंने अपना बिस्तर बिछाया – नीचे दरी, एक चद्दर, सिरहाना, ऊपर एक चद्दर और जैसे-तैसे कर के मच्छरदानी भी टांगी। क्योंकि पक्की दीवारो में कीलें नहीं थीं और मेरे पास रस्सी भी नहीं थी। कुछ देर बाद एक और बर्मी अभियुक्त भी वहीं आ गये। वे बहुत ही बेचैन और उद्विग्न थे। बार-बार चिल्ला कर कहते मैं निर्दोष हूं। कभी बीवी-बच्चों को स्मरण कर रोते, कभी अधिकारियों को कोसते। कुछ देर बाद रात ९ बजे के लगभग उन्होंने भोजन किया, जो साथ लेते आये थे। मेरे पास तो खाने को कुछ भी नहीं था। उसी प्रकार लेट गया। कुछ साधना की, कुछ अर्चना की और सो गया। मुझे अपने बारे में कोई चिंता नहीं थी। केवल यही आशंका कि कहीं घर के लोगों को व्यर्थ में तंग न करें। वह बर्मी भाई रात भर बीच-बीच में रोता, चिल्लाता रहा; पर मुझे तो अच्छी नींद आई! सबेरे जब जेलर अपने "राउंड" पर आया तो भी वह युवक उसी प्रकार रोकर अपने निर्दोष होने का राग अलापता रहा। कुछ देर बाद उसे कहीं और ले गये और उसके स्थान पर भारतीय व्यापारी भाई आ गये। ये कुछ परिचित व्यक्ति थे। उन्होंने बताया कि वे १४ महीनों से इसी जेल में हैं। अभी तक उनके बारे में कोई निर्णय नहीं हो पाया है। मैं नहीं डरा।

मैं कुल ३५ दिन इसी कमरे में रहा। द्वार (फाटक) २४ घंटे बंद रहता था, प्रातः ४ बजे एक कैदी मलमूत्र का गमला लेने आता, द्वार खोला जाता और हम उस गमले को दोनों हाथों से उठाकर द्वार तक ले जाते, वह लेता, साफ करके हमें दे देता और उसे हम यथा स्थान रख देते। यह गमला चीनी मिट्टी का आयताकार १८" व्यास का था। वहीं एक कोने में रखा रहता और हम दोनों इसी में मल, मूत्र, बचा हुआ भोजन डालते थे। कोई पर्दा नहीं था। ३-४ दिनों में एक बार प्रातः स्नान करने को मिलता। वार्डर कमरे खोलता, मैं सिर और मुख चादर से ढँक कर गुसलखाने जाता, जहां सीमेंट के बने हौद में पानी भरा रहता। कपड़े धोने के साबुन की एक छोटी टिकिया भी प्रयोग के लिये रखी रहती। एक बार में एक व्यक्ति ही उस अँधेरे स्नानघर में स्नान करता। वार्डर बाहर खड़ा रहता और जोर से डांटकर कहता, 'ज्यादा पानी का प्रयोग न करो, पानी की किल्लत है!

कोई ९ बजे के लगभग चाय या काफी मिलती। हम सीखचों के भीतर से अपना मग बाहर करते और उसे लेकर पी लेते। इसी प्रकार ११ बजे भोजन आता। हम अपनी प्लेट जो कि लोहे पर इनैमल की हुई थी, 'बा के इस ओर रखते तो भोजन लाने वाला कैदी लंबे कलछुल से हमारी प्लेट में चावल-दाल आदि डाल देता। चावल मोटे थे। हमें 'सफेद' चावल मिलते और 'साधारण' कैदियों को भूरे (Brown) चावल दिये जाते थे। पीने के पानी के लिये एक घड़ा फाटक के बाहर पड़ा रहता, हम सीखचों में से मग निकालकर पानी निकालते और पी लेते। चावलों में कंकड़ तथा धान के छिलके बहुत होते। मैं थोड़े से चावल लेता, धीरे-धीरे कंकड़ और छिलके दूर कर खा लेता। शाम फिर चाय मिलती थी। कभी-कभी कोई सब्जी भी मिल जाती। मुझे कोई तनाव नहीं था कि भोजन गंदा है।

चौथे दिन 'पूछताछ' के लिए एक दूसरे कमरे में ले जाया गया। दो नये बी. एस. आई. अधिकारी तथा एक सैनिक अधिकारी के सामने हाजिर हुआ। उन्होंने बड़ी सभ्यता और संयत रूप से पूछताछ की। कोई डांट-डपट या भय का प्रदर्शन नहीं किया। मैं भी शांत भाव से समता में रहते हुए सत्य ही बोला। कोई बात छिपाने

का प्रयत्न नहीं किया। अंत में मुझे शत-प्रतिशत निर्दोष करार दिया गया।

अचानक १२ अप्रेल ७४ को प्रातः नाश्ते के बाद वार्डर ने आ कर कहा –आप जेल का सामान यहीं छोड़ कर, अपना सामान उठा कर मेरे साथ चलो। सिर और मुख तो ढका ही था। मैंने समझा किसी और कमरे में जाना होगा। परंतु नहीं, इसके बाद मुख की चद्दर उतार दी गई, इधर-उधर बैठे फोटो खिंचवाओ, अता-पता लिखाओ, पहले कभी जेल गये हो आदि की खाना-पूरी हुई। दाढ़ी-मूंछ की सफाई हुई। इन सब के बाद एक कमरे में बैठाकर एक सैनिक अफसर ने अच्छे नागरिक बन कर रहने का उपदेश दिया। ७:३० बजे सायं के लगभग एक लारी में बैठाकर घर पहुँचा दिया गया। अचानक घर पहुँच जाने पर सब को आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। एक मित्र भी सामने बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीमती जी ने भी इतने दिनों बड़ी ही हिम्मत तथा समता से काम लिया, जिसकी सभी ने बड़ी सरहना की।

अब इस घटना को २० वर्ष से अधिक हो गये हैं। इसको स्मरण करता हूं तो अच्छी तरह याद आता है कि इन ३५ दिनों में कभी किसी भी अधिकारी, चाहे वह बी. एस. आई. का था या जेल के कर्मचारी, किसी के प्रति द्वेष, दुर्भावना, क्रोध या घृणा के भाव नहीं आये। न ही अपने में कोई हीन-भावना आई। अपने को अपराधी भी नहीं अनुभव किया। उन लोगों के प्रति यह विचार रहा कि वे तो अपने ऊपर के अधिकारियों के आदेशों का ही पालन करते हैं। मेरे साथ भी सौम्य और सभ्यता का व्यवहार रहा। मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं। यदि दोषी है तो सरकार की नीति।

उस दिन इसकी चर्चा हुई तो एक मित्र ने पत्र में लिखा कि 'आप जब वापस आये तो स्थितप्रज्ञ की जो मुद्रा आपके मुख पर देखी वह अभी तक याद है।' मेरा अपना विचार है कि इस सारी सफलता का श्रेय विपश्यना साधना को ही है। वास्तव में विपश्यना का बल बड़ा महान है।

(– सी-३४, पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली – ११००१७.)

तिहाड़ जेल में कैदियों का शिविर

विश्व का सबसे बड़ा विपश्यना साधना शिविर तिहाड़ की जेल संख्या –४ में अप्रेल ४ से १५ तक सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इस दस दिवसीय शिविर की विशेषता यह थी कि इसमें १००३ पुरुषों ने भाग लिया, जिनमें से ९९७ कैदी (१९ विदेशी कैदी) और ६ जेल-कर्मचारी थे। साथ ही जेल संख्या –१ में ४९ महिला कैदियों का शिविर भी आयोजित किया गया, जिनमें ८ विदेशी महिलाएं थीं।

जिन कैदियों ने इसमें भाग लिया, उनमें से ९० प्रतिशत ऐसे विचाराधीन कैदी थे जिन्हें अभी तक सजा नहीं सुनाई गयी थी, १० प्रतिशत कैदी गंभीर अपराधों की सजा भुगतने वालों में से थे, जो कि खून, डकैती, बलात्कार, नशीले पदार्थों के व्यापार और आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त थे। शिविरार्थियों में ४३ स्नातक, २५९ कम से कम १०वीं कक्षा पास, ३४० उससे कम और शेष अशिक्षित थे। सभी संप्रदायों – जैसे मुसलमान, हिंदू, सिक्ख, ईसाई और बौद्ध संप्रदाय के कैदी थे।

पु. गुरुजी द्वारा संचालित यह ३७० वां और सबसे बड़ा शिविर था। इन दस दिनों के दौरान पु. गुरुजी एवं माताजी स्वयं जेल में ही रहे। इस शिविर में विशेषतः १५ वरिष्ठ सहायक आचार्यों और १० अनुभवी धर्मसेवकों ने उन्हें सहायता की।

तिहाड़ जेल में पहले आयोजित ५ शिविरों की अभूतपूर्व सफलता के परिणामस्वरूप इस विशाल शिविर का आयोजन किया गया। नवंबर ९३ के एक ११९ लोगों के शिविर में ९६ कैदी और २३ जेल अधिकारी बैठे थे। जनवरी ९४ में एक ही साथ चारों जेलों में ४ शिविर लगे, जिनमें ३०० कैदियों ने भाग लिया था।

इस बड़े शिविर में १२२ पुराने कैदियों ने दुबारा भाग लिया और लगभग ६० पुराने कैदी साधकों ने शिविर में धर्मसेवा के पुण्य का लाभ अर्जित किया।

पूर्व शिविरों के कैदियों पर **'आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज'** द्वारा विस्तार से की गयी शोध के अनेक अच्छे परिणाम आये। कैदियों को अपने गुनाहों का वास्तविक पश्चाताप हुआ और उनकी प्रतिशोध की भावना कम हुई। उनका स्वानुशासन बढ़ा और कैदियों तथा जेल कर्मचारियों के पारस्परिक संबंधों में सुधार आया। अनेक कैदियों ने कहा कि उन्हें इस शिविर से मन की शांति मिली। इस विशाल शिविर के परिणाम पर भी शोध जारी है और प्रारंभिक परिणाम उत्साहवर्धक हैं।

तिहाड़ जेल की महानिरीक्षक श्रीमती किरण बेदी के योग्य मार्गदर्शन से वहां अनेक सुधार-कार्य प्रारंभ किए गए – जैसे साक्षरता अभियान, नशे से मुक्ति, व्यावसायिक प्रशिक्षण, योगादि एवं अन्य सामाजिक तथा शैक्षणिक कार्य। इन सभी में **विपश्यना का प्रयोग** सबसे अनूठा और शीघ्र फलप्रद साबित हुआ। इसके परिणाम से कैदियों में अभूतपूर्व सुधार आया है। कइयों ने जो विचार व्यक्त किए उनसे लगता है कि वे सचमुच गुनाह की दुनिया छोड़ कर सदाचार का जीवन अपनायेंगे। कइयों ने यह विचार व्यक्त किया कि यदि विपश्यना साधना उन्हें पहले मिलती तो वे जेल में आते ही नहीं। अब वे समाज में विपश्यना के माध्यम से बड़ा परिवर्तन लाने में सहयोगी बनेंगे। जेल से छूट कर वे एक सम्मानित नागरिक का जीवन जीयेंगे।

विश्व-कारागृह के इतिहास में पहली बार किसी जेल में **विपश्यना साधना केंद्र** स्थापित हुआ है। पु. गुरुजी ने **'धम्म तिहाड़'** नामक इस नए केंद्र का उद्घाटन किया, जिसमें हर महीने की **१ली** और **१५वीं** तारीख से **दस दिवसीय** शिविर लगा करेंगे। इसी में पुराने साधकों के लिए **एक दिवसीय** शिविरों का भी आयोजन किया जायेगा। जिन कैदियों ने विपश्यना शिविर में भाग लिया है, उनके दैनिक नियमित अभ्यास के लिए भी जेल द्वारा सुविधा प्रदान की गयी है।

इसी प्रकार अनेकों का मंगल हो!